Research Paper E-ISSN NO : 2455-295X | VOLUME : 3 | ISSUE : 9 | SEP 2017

वाल्मीकि रामायण के सुभाषितों की जीवन में महत्ता

डॉ. बलवंत सिंह चौहान [1]

[1] प्राध्यापक (संस्कृत), डॉ. बी.आर.ए. राजकीय, महाविद्यालय, श्रीगंगानगर (राज.)

ABSTRACT

भारतीय जन–मानस में मर्यादापुरुषोत्तम के रूप में प्रतिष्ठित श्रीराम की कथा का सर्वप्रथम विवरण 'रामायण' में ही मिलता है। यही कारण है कि भारतवर्ष की साहित्यिक परम्परा में वाल्मीकि को 'आदिकवि' और रामायण को 'आदिकाव्य' कहा जाता है। रामायण का जहाँ सांस्कृतिक, धार्मिक व ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्व है, वहीं इसका साहित्यिक मूल्य सर्वोपरि है। इसी कारण यह ग्रन्थ परवर्ती काव्य–रचनाओं का उपजीव्य रहा है। वाल्मीकि रामायण के धीरोदात्त गुणों से युक्त नायक श्रीराम अद्भुत गुणों के अद्भुत संयोग से बने महामानव के व्यक्तित्व को पूर्णतः चरितार्थ करते हैं। रामायण में पितृभक्ति, पुत्र–प्रेम, स्वामी भक्ति, भ्रातृस्नेह इत्यादि मानवीय गुणों एवं सत्य, धर्म, कर्तव्यनिष्ठा व सदाचारादि सामान्य गुणों का प्रतिपादन पदे–पदे द्रष्टव्य है। वस्तुतः आदिकवि महर्षि वाल्मीकि प्रणीत 'रामायण' महाकाव्य विश्व का प्रथम महाकाव्य होन के साथ ही मानव को मार्ग दिखाने वाला एक महान् दिग्दर्शन भी है, जो अनन्तकाल से लेकर आज सार्वकालिक रूप से प्रासंगिक बना हुआ है। इस प्रकार उक्त आदिकाव्य मानव समाज के संगठन, सामाजिक जीवन, गुणों, धर्मों और जीवन मूल्यों का यथार्थ निदर्शन करवाने वाला है।

Keywords: परिकर्षति, किंशुकसेचकः, उत्साहवन्तो, परेतकल्पा, पापसंश्रयात्।

शोध उद्देश्य –

1. सहृदय पाठकों और अध्येताओं को भोगवादी संस्कृति के विरुद्ध त्यागमय व संयमित जीवन जीने के लिए प्रेरित करना।
2. पाठकों और शोधार्थियों को लोक–व्यवहार का ज्ञान, इन्द्रिय संयम, नारी सम्मानव भारतीय संस्कृति से अवगत करवाकर नैतिक मूल्यों को अंगीकार करने हेतु उन्मुख करना।
3. दिशाहीन होती जा रही युवापीढ़ी को अनुशासित व सन्तुलित जीवनशैली से अवगत करवाना।
4. राष्ट्र की समृद्धि के संरक्षण व विश्वमंगलकामना हेतु सहृदय पाठकों को जागरूक करना।
5. पर्यावरण के प्राकृतिक उपादानों को सुरक्षित व संरक्षित रखने हेतु प्रोत्साहित करना।

विषय उपस्थापन्न –

आदि कवि महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायण' महाकाव्य विश्व का प्रथम महाकाव्य होने के साथ ही मानव को मार्ग दिखाने वाला एक महान् दिग्दर्शन भी है। इस महाकाव्य में जीवन के मूलभूत तत्त्वों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। यह ग्रंथ मनुष्य मात्र के समस्त गुणों, धर्मों और जीवन मूल्यों का यथार्थ निदर्शन करवाने वाला है। वाल्मीकि रामायण बालकाण्ड, अयोध्याकाण्ड, अरण्यकाण्ड, किष्किन्धाकाण्ड, सुन्दरकाण्ड, युद्धकाण्ड और उत्तरकाण्ड इन कुल सात काण्डों में प्राप्त होता है। रामायण के इन सात काण्डों में धीरोदात्त क्षत्रिय नायक श्रीराम के चरित्र का विशदतया वर्णन मिलता है, वहीं ब्रह्माण्ड सुन्दरी सीता नायिका के रूप में चित्रित है। इसके अतिरिक्त दशरथ, लक्ष्मण, भरत, हनुमान, अंगद, सुग्रीव, विभीषण, रावण, मन्दोदरी व मेघनाद आदि पात्र यथास्थान अपनी विशिष्टता के कारण प्रख्यात हैं। रामायण में प्रस्तुत कथानक जहाँ पदे–पदे प्रेरणास्पद है, वहीं काव्य में पठित सूक्तियाँ उक्त काव्य के चरित्रों के चिन्तन का सार प्रस्तुत करने वाली हैं। महाकाव्य में प्रस्तुत सूक्तियाँ न केवल पात्रों के चरित्रों का प्रतिनिधित्व करने वाली है, बल्कि कवि के जीवनभर के चिन्तन और अनुभव का भी निचोड़ प्रस्तुत करने वाली है। महाकाव्य में सुभाषित सूक्तियाँ यत्र–तत्र बिखरी पड़ी हैं।

बालकाण्ड के प्रथम सर्ग में शूर्पणखा नामक राक्षसी का लक्ष्मण के द्वारा नाक काटकर उसे कुरूप बना दिया जाता है। तब शूर्पणखा के कहने पर चढ़ाई करने वाले खर, दूषण, त्रिशिरा आदि राक्षसों को श्रीराम ने युद्ध में मार डाला। उस समय रावण अपने कुटुम्ब का वध सुनकर मारीच राक्षस से सहायता माँगते हैं। मारीच राक्षस उन्हें सलाह देता है कि बलवान् राम के साथ तुम्हारा विरोध ठीक नहीं है।

न विरोधी बलवतो क्षमो।[1]

परन्तु रावण काल की प्रेरणा से मारीच की सलाह नहीं मानते हैं, जिसका परिणाम उसे भोगना पड़ता है।

बालकाण्ड के त्रयोदश सर्ग में राजा दशरथ पुत्रप्राप्ति हेतु अवश्मेध यज्ञ की तैयारी करते हैं। राजा दशरथ उस समय अपने मंत्रिऋयों व अमात्यादि को सचेत करते हुए कहते हैं कि अतिथियों का विधिवत् सत्कार किया जावे और सबको सम्मानपूर्वक अन्न का दान किया जावे। अति उत्साह में किसी का भी अनादर नहीं होना चाहिए। क्योंकि अनादरपूर्वक दिया गया दान दाता को नष्ट कर देता है।

सर्वे वर्णा यथा पूजां प्राप्नुवन्ति सुसत्कृताः।

न चावज्ञा प्रयोक्तव्या कामक्रोधवशादपि।।[2]

अवज्ञया न दातव्यं कस्यचिल्लीलयापि वा।

अवज्ञया कृतं हन्याद् दातारं नात्र संशयः।।[3]

बालकण्ड में देवतुल्य पराक्रमी राजा कुशनाभ की सौ कन्याएँ युवावस्था में एक दिन राज्य के उद्यान में नाच–गान कर रही थी। उस समय वायुदेव ने उनसे कहा कि तुम मुझे पतिरूप में वरण करो परन्तु कन्याओं के पिता के निर्देशों के अनुसार विवाह करना स्वीकार किया। वे लज्जित होकर अपने पिता कुशनाभ के पास जाकर सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाती हैं। इसपर उनके पिता कुशनाथ अपनी पुत्रियों की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि हे पुत्रिया ! आपने मेरे कुल की मर्यादा की रक्षा करते हुए कामभाव को अपने मन में स्थान नहीं दिया और वायुदेव को क्षमा कर दिया क्योंकि स्त्री हो या पुरुष– सबके लिए क्षमा ही सबसे बड़ा आभूषण है। आप सब में जो सहिष्णुता है, वह देवताओं के लिए भी दुष्कर है। हे पुत्रिया ! क्षमा दान है, क्षमा सत्य है, क्षमा यज्ञ है, क्षमा यश है और क्षमा धर्म है। इस क्षमा पर सम्पूर्ण जगत् टिका हुआ है –

अलंकारो हि नारीणां क्षमा तु पुरुषस्य वा।

दुष्करं तच्च वै क्षान्तं त्रिदशेषु विशेषतः।।[4]

क्षमा दानं क्षमा सत्यं क्षमा यज्ञाश्च पुत्रिकाः।

क्षमा यशः क्षमा धर्मः क्षमायां विष्ठितं जगत्।।[5]

बालकाण्ड के अठावनवें सर्ग में इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न त्रिशंकु नामक राजा सशरीर स्वर्ग जाना चाहता था। उन्होंने महर्षि वशिष्ठ से इस निमित्त यज्ञ करवाने का अनुरोध किया, जिसे महर्षि वशिष्ठ ने स्वीकार नहीं किया। फिर त्रिशंकु राजा वशिष्ठ ऋषि के पत्रों के पास जाकर अनुरोध करता है परन्तु उनके पुत्रों ने उसे चाण्डाल होने का शाप दे दिया। अन्त में त्रिशंकु राजा महर्षि विश्वामित्र के पास जाकर ही अपनी पीड़ा व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भाग्य (कालचक्र) ही बलवान होता है। पुरुषार्थ तो फलहीन है। प्राणी का सम्पूर्ण जीवन दैव से ही प्रभावित होकर चलता है। वस्तुतः प्राणी के लिए दैव ही परमगति है।

दैवमेव परं मन्ये पौरुषं तु निरर्थकम्।

दैवेनाक्रम्यते सर्वं दैवं हि परमा गतिः।।[6]

अयोध्याकाण्ड के इक्कीसवें सर्ग में राजा दशरथ श्रीराम का राज्याभिषेक करने की बजाय 14 वर्ष का वनवास देते हैं। राजा दशरथ कामदेव के वशीभूत होकर कैकेयी की बातों में आकर दो वरदान दे देते हैं। ऐसे समय में लक्ष्मण राम से कहते हैं कि जब तक अयोध्यावासी आपके प्रवास के विषय में जाने, उससे पहले ही आप शासन को अपने अधीन कर लो और राज्याभिषेक का कार्य सम्पादन करें। मैं लक्ष्मण

आपके साथ हूँ। जो कोई भी इस कार्य में विघ्न उपस्थित करेगा, मैं उन सबका वध कर दूंगा क्योंकि कोमल स्वभाव वाला सदा ही अपमानित होता है–

मृदुर्हि परिभूयते।[7]

ऐसी विकट परिस्थिति में यदि हमारे पिताश्री कैकेयी के बहकावे में आकर आपके वनवास से सन्तुष्ट दिखे तो ऐसी स्थिति में वे कारावास अथवा वध के योग्य ही हैं क्योंकि कर्तव्य–अकर्तव्य को ज्ञान खोकर यदि गुरु भी घमण्ड में आकर कुमार्ग पर चले तो उसे भी दण्ड देना परम धर्म है –

गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यामजानतः।

उत्पथं प्रतिपन्नसय कार्यं भवति शासनम्।।[8]

इसी प्रसंग में श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि मेरे प्रति तुम्हारा जो परम उत्तम स्नेह है, मैं उसे भलीभाँति जानता हूँ। तुम्हारे पराक्रम, धैर्य और दुर्धष तेज का भी मुझ ज्ञान है परन्तु मैं पिता के वचनों का पालन करना मेरा श्रेष्ठ धर्म है। धर्म ही संसार में श्रेष्ठ तत्त्व है। धर्म में ही सत्य की प्रतिष्ठा है। यदि मैंने पिताश्री के वचनों का पालन नहीं किया तो पिताश्री असत्यवादी हो जायेंगे, जो कि अधर्ममूलक है–

धर्मो हि परमो लोके धर्मे सत्यं प्रतिष्ठितम्।

धर्मसंश्रितमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम्।।[9]

इसी प्रसंग में श्रीराम अपने भाई लक्ष्मण से पुनः कहते हैं कि तुम सदा ही मुझमें भक्ति रखते हो और तुम्हारा पराक्रम कितना महान् है, यह भी मुझसे छिपा नहीं है। फिर भी जिस कर्म में धर्म आदि समस्त पुरुषार्थों का समावेश न हो, उसको नहीं करना चाहिए। जिससे धर्म की सिद्धि होती है, उसी का आरम्भ करना चाहिए। जो केवल अर्थपरायण होता है, वह लोक में सबके द्वेष का पात्र बन जाता है तथा धर्मविरुद्ध कार्य में अत्यन्त आसक्त होना प्रशंसा नहीं, निन्दा ही है –

यस्मिंस्तु सर्वे स्युरसंनिविष्टा, धर्मो यतः स्यात् तदुपक्रमेत।

द्वेष्यो भत्यर्थपरो हि लोके, कामात्मता खल्वपि न प्रशस्ता।।[10]

अयोध्याकाण्ड के तेइसवें सर्ग में लक्ष्मण श्रीराम से कहते हैं कि गुणवान् ज्येष्ठ पुत्र के रहते हुए छोटे का अभिषेक करना लोकविरुद्ध कार्य है। लक्ष्मण के प्रश्नों का उत्तर देते हुए श्रीराम कहते हैं कि वनवास की स्थिति तो दैवाधीन है। इस पर लक्ष्मण पुनः श्रीराम से कहते हैं कि नपुंसक या वीर्यहीन ही भाग्य का अनुसरण करते हैं। सर्वत्र प्रशंसित शौर्य वाले वीर भाग्य का अनुसरण नहीं करते हैं –

दैवं पुरुषकारेण यः समर्थः प्रबाधितुम्।

न दैवेन विपन्नार्थः पुरुषः सोऽवसीदति।।[11]

वहीं अयोध्याकाण्ड के चौबीसवें सर्ग में कौशल्या माता श्रीराम से कहती हैं कि मैं इन सातों के बीच नहीं रह सकती। यदि पिताश्री की आज्ञा का पालन करने की इच्छा से तुम वन में जाने का निश्चय कर बैठे हो तो मुझे भी वनवासिनी हरिणी की भाँति वन में ही ले जाओ। इस अवसर पर श्रीराम माता कौशल्य को सान्त्वना देते हुए कहते हैं कि स्त्री के जीवित रहते उसका पति ही उसके लिए देवता और ईश्वर के समान होता है। महाराज दशरथ आपके और मेरे दोनों के ही प्रभु हैं। वे कहते हैं कि पिता की आज्ञा का पालन करना मेरा परम कर्तव्य है। राजा तो सब लोगों के स्वामी, श्रेष्ठ गुरु, ईश्वर और प्रभु होते हैं –

राजा भर्ता गुरुः श्रेष्ठः सर्वेषामीश्वरः प्रभुः।।[12]

जीवन्त्या हि स्त्रिया भर्ता दैवतं प्रभुरेव च।।[13]

श्रीराम यही नहीं रुकते। वे अपनी माता कौशल्या को राजा दशरथ की देखभाल करने हेतु सावचेत करते हुए कहते हैं कि जो श्रेष्ठ नारी व्रत, उपवासादि में तत्पर होकर भी पति की सेवा नहीं करती है, उसे पापियों को मिलने वाली गति (नरकादि) प्राप्त होती है –

व्रतोपवासनिरता या नारी परमोत्तमा।

भर्तारं नानुवर्तेत सा च पापगतिर्भवेत।।[14]

जो अन्यान्य देवताओं की वन्दना और पूजा से दूर रहती है। वह नारी भी केवल पति की सेवामात्र से ही उत्तमस्वर्गलोक को प्राप्त कर लेती है। अतः नारी को चाहिए कि वह पति के प्रिय व हितसाधन में तत्पर रहकर सदैव उसकी सेवा करे –

भर्तुः शुश्रूषया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।

अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देवपूजनात्।।[15]

शुश्रूषामेव कुर्वीत भर्तुः प्रियहिते रता।

एष धर्मः स्त्रिया नित्यो वेदे लोके श्रुतः स्मृतः।।[16]

अयोध्याकाण्ड के बासठवें सर्ग में माता कौशल्या पहले तो महाराज दशरथ से कटुवचन बोलती है फिर कहती हैं कि धर्मज्ञ महाराज! मैं स्त्री धर्म को भलीभाँति जानती हूँ। इस समय क्रोधावेश में जो न कहने योग्य बातें मैंने आपसे कही हैं, वे पुत्रशोक से पीड़ित होने के कारण ही मेरे मुख से निकली हैं। वस्तुतः शोक धैर्य का नाश कर देता है। शोक शास्त्र ज्ञान को भी लुप्त कर देता है और शोक सब कुछ ही नष्ट कर देता है। अतः शोक के समान कोई दूसरा शत्रु नहीं है –

शोको नाशयते धैर्यं शोको नाशयते श्रुतम्।

शोको नाशयते सर्वं नास्ति शोकसमो रिपुः।।[17]

अयोध्याकाण्ड के तरेसठवें सर्ग में राजा दशरथ अपने पुत्रशोक के कारण बार–बार मूर्छित हो जाते हैं। वे श्रवणकुमार हत्या सम्बन्धी अपने पापकर्म को याद करके भावी मृत्यु सम्बन्धित दिये गये श्राप को याद करते हैं। वे कौसल्या से कहते हैं कि हे कल्याणि ! कर्तारूपी प्राणी शुभ या अशुभ जो भी कर्म करता है, वह अपने उस कर्म के फल को अवश्य ही प्राप्त करता है –

यदाचरति कल्याणि शुभं वा यदि वाशुभम्।

तदेव लभते भद्रे कर्ता कर्मजमात्मनः।।[18]

वे यहीं नहीं रुकते, बल्कि अपने किये पापकर्म पर पश्चात्ताप करते हुए कहते हैं कि जो कर्मों का आरम्भ करते समय उनके फलों की गुरुता या लघुता को नहीं जानता है, उनसे होने वाले लाभरूपी गुण और हानिरूप दोष को नहीं समझता, वह मनुष्य मूर्ख ही कहलाता है –

गुरुलाघवमर्थानामारम्भे कर्मणां फलम्।

दोषं वा यो न जानाति स बाल इति होच्यते।।[19]

इसी प्रकार जो क्रियमाण कर्म के फल का ज्ञान या विचार न करके केवल कर्म की ओर ही दौड़ता है, उसे उसका फल मिलने के समय उसी प्रकार शोक होता है, जैसे आम काटकर पलाश सींचने वाले को हुआ करता है –

अविज्ञाय फलं यो हि कर्म त्वेवानुधावति।

स शोचेत फलवेलायां यथा किंशुकसेचकः।।[20]

अयोध्याकाण्ड के 105वें सर्ग में वनवास में चलते समय भरत श्रीराम से पिताश्री दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाते हैं। श्रीराम इस अवसर पर गंगा में जाकर जल से तर्पण करते हैं। वनवास से लौटते समय श्रीराम भरत को प्रेमपूर्वक समझाते हुए कहते हैं कि यह जीव ईश्वर क समान स्वतन्त्र नहीं है। अतः कोई यहाँ अपनी इच्छानुसार कुछ भी नहीं कर सकता। वह स्वातन्त्र्यरहित है। इसलिए इस लोक से हो या परलोक से कृतान्त अर्थात् अन्तर्यामी रूप काल उस जीवात्मा को उसके कर्मों के अनुसार खींच लेता है –

नात्मनः कामकारो हि पुरुषोऽयमनीश्वरः।

इतश्चेतरतश्चैनं कृतान्तः परिकर्षति।।[21]

श्रीराम भरत को चिन्तित देखकर कहते हैं कि जितना भी लौकिक संग्रह है, उनका नाश निश्चित है। लौकिक उन्नतियों का भी अन्त में पतन होता है। जीवन में संयोग का अन्त वियोग है और जीवन का अन्त मरण है। इसलिए पिताश्री की मृत्यु पर हमे अधिक शोक नहीं करना चाहिए –

सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छयाः।

संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं च जीवितम्।।[22]

अयोध्याकाण्ड के 106वें सर्ग में श्रीराम वनवास से अयोध्या आने को मना कर देते हैं और वन में ही रहने का निश्चय कर लेते हैं। वहीं भरत कैकेयी को मातृवधरूपी लोकनिन्दित कर्म समझकर सजा नहीं देते हैं। अपने पिता द्वारा कैकेयी के वचन को मानना उनकी दृष्टि में मोह के कारण ही हुआ था। इसी प्रसंग में वे कहते हैं कि लोक में एक प्राचीन किंवदन्ती प्रचलित है कि अनन्तकाल में सब प्राणी मोहित हो जाते हैं। उनकी बुद्धि विनष्ट हो जाती है। राजा दशरथ ने ऐसा कठोर कर्म करके उक्त किंवदन्ती को सत्य कर दिखाया –

अनन्तकाले हि भूतानि मुह्यन्तीति पुरा श्रुतिः।।[23]

अयोध्याकाण्ड के 109वें सर्ग में श्रीराम जाबालि से कहते हैं कि यदि मैं अपनी प्रतिज्ञा त्यागकर स्वेच्छाचारी हो जाऊँगा तो यह अनुचित होगा। क्योंकि लोग राजा के व्यवहार का ही अनुसरण करते हैं। राजा का चरित्र सत्य पर आधारित और क्रूरतारहित होना चाहिए क्योंकि ऋषि, देव व श्रेष्ठ मनुष्यादि सत्य का ही आचरण करते हैं। इस प्रकार सबकुछ सत्य पर ही आश्रित है। श्रीराम वहीं नहीं रूकते। वे पुनः कहते हैं कि जिस प्रकार लोग सर्प से उद्विग्न हो जाते हैं, उसी प्रकार असत्यवादी से भी व्याकुल हो जाते हैं। वस्तुतः संसार में सत्यपरक धर्म ही श्रेष्ठ होता है। सत्य के बिना धर्म कुछ भी नहीं है। सत्य ही सबका मूल है –

सत्ये लोके प्रतिष्ठितः।[24]

धर्मः सत्यपरो लोके मूलं सर्वस्य चोच्यते।[25]

उपर्युक्त प्रसंग में पुनः श्रीराम कहते हैं कि संसार में सत्य ही ईश्वर है तथा सत्य से बढ़कर कोई परम पद नहीं है –

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।

सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।[26]

अरण्यकाण्ड के अड़तीसवें सर्ग में मारीच रावण को समझाते हुए कहते हैं कि तुम्हारे पाप से सारे राक्षस बिना पाप किये ही मृत्यु को प्राप्त हो जायेंगे। क्योंकि जो लोग आचार–विचार से शुद्ध हैं और पाप या अपराध नहीं करते हैं, वे भी यदि पापियों के सम्पर्क में चले जायें तो दूसरों के पापों से ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे साँप वाले सरोवर म निवास करने वाली मछलियाँ उस सर्प के साथ ही मारी जाती हैं –

अकुर्वन्तोऽपि पापानि शुचयः पापसंश्रयात्।

परपापैर्विनश्यन्ति मत्स्या नागह्रदे यथा।।[27]

इसी अरण्यकाण्ड में मारीच राक्षस के बार–बार मना करने पर भी रावण सीताहरण कार्य से विमुख नहीं होता है। उस समय मारीच राक्षस रावण से कहते हैं कि हे निशाचर रावण ! मैं आपका हितैषी हूँ, इसलिए तुम्हें पापकर्म से रोक रहा हूँ। परन्तु तुम्हें मेरी बात सहन नहीं हो रही है। यह सत्य है कि जिनकी आयु समाप्त हो जाती है, वे मरणासन्न पुरुष अपने सुहृदों की कही गई हितकर बातें स्वीकार नहीं करते हैं –

परेतकल्पा हि गतायुषो नरा।

हितं न गृह्णन्ति सुहृदिभरीरितम्।।[28]

अरण्यकाण्ड के 63वें सर्ग में श्रीराम पञ्चवटो के आस–पास सीता को न देखकर अनेक दुःखद घटनाओं की कल्पना करते हुए मूर्छित प्रायः हो जाते हैं। उस समय छोटे भाई लक्ष्मण श्रीराम को धीरज बँधाते हुए कहते हैं कि उत्साह सम्पन्न लोग ही विकट परिस्थितियों में भी दुःखी नहीं होते हैं। अतः आप धैर्य रखें और सीता जी को हम अतिशीघ्र ढूंढ लेंगे –

उत्साहवन्तो हि नरा न लोके।

सीदन्ति कर्मस्वतिदुष्करेषु।।[29]

निष्कर्ष –

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि सम्पूर्ण वाल्मीकि रामायण में सूक्तियाँ पदे–पदे भरी पड़ी है। महाकाव्य में प्रस्तुत सूक्तियाँ सहृदय पाठकों के जीवनपथ पर आगे बढने के लिए प्रकाशस्तम्भ प्रस्तुत करने वाली हैं। महाकाव्य में शिष्टाचार, लोक–व्यवहार, धर्म–पालन, कर्तव्य–अकर्तव्य, शुभ व अशुभ आचरण, जीवन में कर्तव्य कर्म को निर्दिष्ट करने वाली, सत्य की प्रतिष्ठा स्थापित करने वाली, धैर्यता आदि तमाम बिन्दुओं पर कही गई सूक्तियाँ यत्र–तत्र बिखरी पड़ी हैं। वस्तुतः ये सूक्तियाँ जीवन का सार हैं, जिन्हें अंगीकार कर हम अपना जीवन सफल बना सकते हैं।

REFERENCES

1. बालकाण्ड 1.51
2. बालकाण्ड 13.15
3. बालकाण्ड 13.33
4. बालकाण्ड 34.7
5. बालकाण्ड 34.8
6. बालकाण्ड 58.22
7. अयोध्याकाण्ड 21.11
8. अयोध्याकाण्ड 21.13
9. अयोध्याकाण्ड 21.41
10. अयोध्याकाण्ड 21.58
11. अयोध्याकाण्ड 23.17
12. अयोध्याकाण्ड 24.16
13. अयोध्याकाण्ड 24.21
14. अयोध्याकाण्ड 24.25
15. अयोध्याकाण्ड 24.26
16. अयोध्याकाण्ड 24.27
17. अयोध्याकाण्ड 62.15
18. अयोध्याकाण्ड 63.06
19. अयोध्याकाण्ड 63.07
20. अयोध्याकाण्ड 63.09
21. अयोध्याकाण्ड 105.15
22. अयोध्याकाण्ड 105.16
23. अयोध्याकाण्ड 106.13
24. अयोध्याकाण्ड 109.10
25. अयोध्याकाण्ड 109.12
26. अयोध्याकाण्ड 109.13
27. अरण्यकाण्ड 38.26
28. अरण्यकाण्ड 41.20
29. अरण्यकाण्ड 63.19